ॐ

नमः श्रीनेमिजिनेन्द्राय

श्रीरत्नसिंहमुनिविरचित

प्राणप्रिय–काव्य।

(भक्तामर स्तोत्रके चौथे पदोंकी समस्यापूर्ति)

जिसे

देवरी (सागर) निवासी नाथूराम प्रेमीने

सरल हिन्दी अर्थसे विभूषित करके

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय द्वारा

बम्बईके

तेलगु प्रेसमें मुद्रित कराकर प्रकाशित किया।

श्रीवीर नि० संवत् २४३८ दिसम्बर सन् १९११ ई०

प्रथमावृत्ति] [मूल्य दो आना।

Published by
Shri Nathuram Premi
Proprietor
Shri Jain Granth Ratnakar Karyalaya
Hirabag, Near C. P. Tank, Bombay.

Printed by
Errauna Shivaya Banpel
Printer Telagu Press
9th Kamathipura Bombay.

निवेदन।

विगत वर्ष जब यह सुन्दर काव्य जैनहितैषीद्वारा प्रकाशित हुआ, तब काव्यप्रेमी महाशयोंने इसे बहुत पसन्द किया और हमसे प्रेरणा की कि, इसे जुदा पुस्तकाकारमें प्रकाशित करना चाहिये। तदनुसार आज यह पृथक् पुस्तकस्वरूपमें प्रकाशित होता है।

इस काव्यका मूलपाठ हमको बसवा जिला जयपुर निवासी श्रीयुत पं० सुन्दरलालजीसे प्राप्त हुआ था, इसलिये हम उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे।

इसके अनुवादमें पहिली बार जो अशुद्धियां रह गई थीं, वे अबकी बार ठीक कर दी गई हैं। इस कार्यमें हमें जटौआ (आगरा) निवासी पं० रामप्रसादजीसे बहुत सहायता मिली है। उनके हम बहुत आभारी हैं।

देवरी (सागर)
कार्तिकशुक्ला. १४
श्रीवीरसंवत् २४३८

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी

काव्यवर्णित कथाका पूर्वसम्बन्ध।

यदुवंशी राजा समुद्रविजयके पुत्र **नेमिनाथ** जो कि जैनियोंके बावीसवें तीर्थंकर हैं, जिस समय राजा उग्रसेनकी कन्या **राजीमतीके** साथ विवाह करनेके लिये जूनागढ़ (काठियावाड़) आये, उस समय उन्होंने देखा कि, एक स्थानमें हजारों पशु बँधे हुए बिलबिलाट कर रहे हैं। रथके सारथीसे पूछनेपर मालूम हुआ कि, वे पशु विवाहमें आये हुए बरातियों और पाहुनोंके भोजनके लिये मारे जावेंगे, इसलिये संग्रह किये गये हैं। बस यह मालूम होते ही नेमिनाथको अतिशय उद्वेग हुआ। 'मेरे एक जीवके सुखके लिये इतने निरपराधी जीव जिस विवाहमें मारे जावेंगे, उस विवाहकी मुझे आवश्यकता नहीं। और जहां ऐसे विवाह होते हैं, उस संसारसे भी मुझे प्रयोजन नहीं। यह कहकर उन्होंने विवाहका सारा शृंगार उतारके फेंक दिया, और गिरनार (रैवतक) पर्वतपर जाकर दिगम्बरी दीक्षा ले ली। इस घटनासे जूनागढ़में खलबली मच गई। सब लोगोंने रोकनेका प्रयत्न किया, पर वह निष्फल हुआ। राजीमती कन्या जो कि नेमिनाथके रूप और गुणोंपर अतिशय मुग्ध थी यह खबर सुनते ही मूर्छित हो गई। निदान वह भी अपनी सखियोंके सहित गिरनार पर्वतपर गई और स्वामीके निकट जाकर इसलिये कि, वे दीक्षाका परित्याग करके मेरा पाणिग्रहण कर लेवें, नानाप्रकारके विनय अनुनय करने लगी। इस छोटेसे काव्यमें राजीमतीके उन्हीं विनय अनुनयोंका वर्णन है। अन्तमें राजीमतीको निराश होना पड़ा। भगवान् नेमिनाथ अपनी प्रतिज्ञापर आरूढ रहे, इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने उपदेश देकर राजीमतीको भी संसारसे विरक्त कर दिया, और वह आर्जिकाकी दीक्षा लेकर तपस्या करने लगी।

नमः श्रीनेमिजिनेन्द्राय।

श्रीरत्नसिंहमुनिविरचित

प्राणप्रिय-काव्य।

(सरल हिन्दी अर्थ सहित)

प्राणप्रियं नृपसुता किल रैवताद्रि—
शृङ्गाग्रसंस्थितमवोचदिति प्रगल्भम्।
अस्मादृशामुदितनील वियोगरूपेऽ—
"वालम्बनं भव जले पततां जनानाम्"॥१॥

अर्थ— उग्रसेन राजाकी पुत्री **राजीमती** गिरनारपर्वतके शिखरपर विराजमान हुए अपने प्रतिभावान् प्राणप्यारे **श्रीनेमिनाथजीसे** इस प्रकार बोली कि, हे श्यामसुन्दर, वियोगरूप जलमें पड़ते हुए हम जैसे जनोंके लिये आलम्बन हूजिये, अर्थात् मुझे सहारा देकर इस विरहसमुद्रसे निकाल लीजिये।

ऊचे सखीसमुदयः सदयस्ततस्तां
चेतः स्थिरीकुरु नितम्बिनि मा विषीद।
चञ्चच्चकोरचटुलाक्षि कृते भवत्याः
"स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्"॥२॥

"तदनन्तर उससे उसकी सखियोंने दयावान् होकर कहा, हे नितम्बिनि! चित्तको स्थिर कर, विषाद मत कर। हे चकोरके समान चंचल और चमकते हुए नेत्रोंवाली सुन्दरी, तेरे लिये पहले हम ही श्रीनेमिनाथसे प्रार्थना करती हैं"

सम्पूर्णचन्द्रवदनां मदनावतार
रामां विहाय नवयौवनचारुवेषाम्।
वृद्धोचितं वयसि संयममुग्रमेन-
"मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुम्" ॥३॥

"हे कामदेवके अवतार, इस नवीन यौवन और सुन्दर वेषवाली तथा पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली स्त्रीको छोड़कर जवानीकी उमरमें भला इस वृद्धावस्थाके योग्य कठिन तपको और कौन मनुष्य है, जो सहसा धारण करनेकी इच्छा करै? अर्थात् इस अवस्थामें लोग स्त्रीको ही ग्रहण करते हैं तपको नहीं।"

स्वामिन् प्रसीद मृगबालविलोलनेत्रा-
मङ्गीकुरुष्व दयितामविलम्बमेनाम्।
अस्मिन्नवे वयसि नाथ वियोगरूपं
"को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्" ॥४॥

"हे स्वामी, प्रसन्न हूजिये और शीघ्र ही इस छोटी हरिणीके समान चंचल नेत्रोंवाली सुन्दरीको अंगीकार कीजिये। हे नाथ, इस नई उमरमें वियोगरूपी समुद्रको ऐसा कौन है, जो अपनी भुजाओंसे तरनेमें समर्थ हो? अर्थात् आप और राजीमती दोनोंसे यह वियोग सहन नहीं होगा।"

एतन्मदीरितवचः कुरु नाथ नोचे-
द्रोत्स्यत्यरं क्षितिपतिः स्वयमुग्रसेनः।
कुर्वन्तमुत्तमतपोऽपि भवन्तमेष
"नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्" ॥५॥

"हे नाथ, आप हमारी यह बात मानें अर्थात् इस सुन्दरीको अंगीकार करें। नहीं तो, स्वयं महाराज उग्रसेन ही शीघ्र आकर आपको रोकेंगे। यद्यपि आप यह उत्कृष्ट तप कर रहे हैं, तो भी क्या वे अपनी बालिकाकी रक्षा करनेके लिये नहीं आवेंगे और आपको नहीं रोकेंगे? अवश्य ही रोकेंगे।"

सम्भोगकेलिकुशलं रमणं रसज्ञाः
स्त्रीणामकृत्रिमविभूषणमामनन्ति।
यन्मण्डनं वनततेर्नियतं वसन्त—
"स्तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु" ॥६॥

सखियोंके इस प्रकार कह चुकनेपर राजमतीने कहा:—हे नाथ! रस रीतिके जाननेवाले मानते हैं कि, संभोगक्रीड़ामें चतुर पति ही स्त्रियोंका विना बनाया—स्वाभाविक भूषण होता है अर्थात् पतिके कारण ही स्त्रीकी शोभा होती है। वन पंक्तियोंके लिये जो वसन्त-ऋतु शृंगारस्वरूप होती है, सो सुन्दर आमके मौरोंके कारणसेही होती है।

दोःकन्दलीग्रथितगाढतरोपगूढे-
नान्योन्यचुम्बितमुखेन सखे प्रकामम्।
सङ्गेन ते विलयमेति वियोगदुःखं
"सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्" ॥७॥

हे सखे, जिसमें भुजलताओंसे लपटाहुआ अतिशय गाढ़ आलिंगन और परस्पर मुखचुंबन होगा, तुम्हारे उस यथेच्छ समागमसे वियोगरूपी दुःख इस तरह विलीन हो जायगा, जिस तरह रातका अन्धकार सूर्यकी किरणोंसे नष्ट हो जाता है।

भाग्योदयात्तदिन मे दिनमेत्यहो नौ
यस्मिन्मिथो मिलितयोः सुरतश्रमोत्थः।
वक्षःस्थले विहितहारविशेषशोभो
"मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः"॥८॥

हे स्वामी, भाग्यके उदयसे मेरे लिये वह दिन कब आवै, जब अपन दोनोंके परस्पर मिले हुए जोड़ेके सुरतक्रीड़ाके श्रमसे निकले हुए पसीनेके बिन्दु वक्षः स्थलमें पहने हुए हारकी शोभाको बढ़ाते हुए मुक्ताफलोंकी (मोतियोंकी) प्रभाको धारण करें।

नेत्रामृते सुहृदि नाथ निरीक्षितेऽपि
हृष्यन्ति यद्भुवि विशोऽत्र किमद्भुतं तत्।
मित्रोदयेऽपि च भवन्ति विचेतनानि
"पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि"॥९॥

हे नाथ, आप नेत्रोंको अमृतके समान लगनेवाले प्यारे मित्र हैं। इसलिये यदि आपके देखनेसे इस पृथ्वीके मनुष्य हर्षित होते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सरोवरोंके कुम्हलाये हुए कमल मित्रके अर्थात् सूर्यके उदय होनेपर ही विकसित होते हैं—खिल उठते हैं।

कान्त्या कुलेन वयसा सुगुणैश्च तैस्तै
स्तुल्यामिमां तव वृणीष्व कुशाग्रबुद्धे।
प्राप्नोति शं स खलु दारजनं जिनेश
"भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति"॥१०॥

सुन्दरता, कुलीनता, जवानी, तथा और और भी गुणोंमें जो आपके समान है ऐसी इस दासीको, हे कुशाग्रबुद्धे, (हे चतुर) व्याह लीजिये - स्वीकार कर लीजिये। क्योंकि हे जिनेश, इस संसारमें जो पुरुष अपना आश्रय करनेवाली स्त्रीको निज विभूतिसे अपने समान कर लेता है, वह निश्चयसे सुखको प्राप्त होता है।

गोरोचनारुचिरगौरतराङ्गयष्टि—
मेनां विहाय कथमाचरसि व्रतं भोः।
त्यक्त्वा सुधारसमहो वत भाग्यलभ्यं
"क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्"॥११॥

हे प्रभो, गोरोचनके समान सुन्दर और अतिशय गौरांगी इस दासीको छोड़कर आप व्रत क्यों धारण करते हैं? अहो! भाग्यसे प्राप्त हुए अमृतको छोड़कर ऐसा कौन है, जो समुद्रके खारे पानीके पीनेकी इच्छा करता है?

एणे दृशौ शशधरे वदनं दिनेशे
पश्यामि धामनिलयं गमनं गजेन्द्रे।
हा किं करोमि हृदयेश वतैकसंस्थं
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥१२॥

हे हृदयेश्वर, मैं हरिणमें आपके दोनों नेत्र, चन्द्रमामें आपका

उज्ज्वलमुख, सूर्यमें आपका तेज और गजराजमें आपकी चाल देखती हूं। परन्तु हाय, मैं क्या करूं, आपके समान एकत्रस्थित सारा रूप दूसरा कहीं नहीं है। अभिप्राय यह है कि, आपके एक एक अंगकी उपमाएँ तो संसारमें मिलती हैं, पर आपके सारे रूपकी तुलना किसीसे भी नहीं हो सकती है; जिसे देखकर मैं कुछ धैर्य धारण करूं।

यन्निर्मितं निशि निशाकरमण्डलेन
गुप्तं तमो विरहिणिव्रजघातघोरम्।
प्रद्योतनः प्रकटयत्यखिलं तदाशु
"यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम्" ॥१३॥

हे नाथ, यह चन्द्रमंडल रातको जो विरहिणी स्त्रियोंका प्राण लेनेवाला घोर अन्धकार बनाता है, और छुपाकर रखता है, सूर्य उस सबको शीघ्र ही प्रकाशित कर देता है। यही कारण है कि, चन्द्रमा अपनी कृतिके प्रगट हो जानेसे दिनमें पलाशके (टेसूके) सफेद पत्तेके सदृश कान्तिहीन हो जाता है—उसका मुंह फीका पड़ जाता है। भाव यह कि, चन्द्रमाकी कृतिको तो सूर्य प्रगट कर देता है, पर आपकी कृतिको—आपने जो मुझे वियोग दुःख दिया है उसको, कोई प्रकाशित नहीं करता!

तार्किक वदामि रजनीसमये समेत्य
चन्द्रांशवो मम तनुं परितः स्पृशन्ति।
दूरे धवे सति विभो परदारशक्तान्
"कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्" ॥१४॥

मैं क्या कहूं, रातको चन्द्रमाके कर (किरणें) मेरे शरीरको सब ओरसे स्पर्श करते हैं—मेरा आलिंगन करते हैं। परन्तु हे विभो, क्या किया जाय? पतिके दूर रहनेपर पराई स्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाले पुरुषोंको स्वच्छन्दतापूर्वक संचार करनेसे कौन रोक सकता है?

पूर्वं मया सह विवाहकृते समागा
मुक्तिस्त्रिया त्वमधुना च समुद्यतोऽसि।
चेच्चञ्चलं तव मनोऽपि बभूव हा तत्
"किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्" ॥१५॥

हे नाथ, पहले तो आप मेरे साथ विवाह करनेके लिये आये थे, और अब आप मुक्तिस्त्रीके विवाह करनेके लिये उद्यत हैं! यदि आपका मन भी इस तरह चंचल हो गया, तो क्या सुमेरुपर्वतका शिखर भी कभी चला होगा?

पर्यङ्कसुन्दरतरे ज्वलितप्रदीपे
कीर्णप्रसूननिवहे शयनीयगेहे।
एका शये कथमहं यदि वृष्णिवंश—
"दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः" ॥ १६ ॥

जिस शयनमन्दिरमें अतिशय सुन्दर पलंग बिछ रहा है, सुगन्धित फूल बिखरे हुए हैं और दीपक जल रहे हैं, उसमें जगतके प्रकाश करनेवाले यदुवंशके दीपक यदि एक आप नहीं हैं, तो प्यारे, बतलाओ, मैं अकेली कैसे सोऊं?

हृत्पङ्कजस्य न कथं विदधासि बोधं
नो वा वियोगतमसः कुरुषे विनाशम् ।
प्रोद्यत्करप्रसरतः परितो यतस्त्वं
"सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके" ॥ १७ ॥

हे मुनीन्द्र, आप लोकमें सूर्यसे भी अधिक महिमाके धारण करनेवाले प्रसिद्ध हैं, फिर आप अपने उद्यमशील करोंको (पक्षमें, किरणोंको) सब ओरसे प्रसार करके अर्थात् भुजाओंसे वेष्टित करके मेरे हृदय कमलको प्रफुल्लित क्यों नहीं करते? तथा वियोग-रूपी अंधकारका विनाश क्यों नहीं करते? (ऐसा किये विना आप सूर्य सरीखे कैसे हो सकते हैं? जैसे वह अपने करोंसे कमलोंका विकाश और अन्धकारका विनाश करता है, उसी प्रकार आपको अपने भुजालिङ्गनसे मेरे हृदयको प्रफुल्लित और वियोगको नष्ट करना चाहिये।)

तद्वीक्षितं प्रकुरुते परितापमङ्गे
ह्येतत्तु सम्मदममन्दतमं तनोति ।
चित्रं विभो तव मुखं सुतरां विभाति
"विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कविम्बम्" ॥ १८ ॥

आश्चर्य है कि, चन्द्रमाके देखनेसे तो शरीरमें बड़ा भारी ताप उठता है--वियोगाग्नि सुलग उठती है, परन्तु आपका यह मुख-चन्द्र देखनेसे अतिशय आनन्द होता है--हृदय शीतल हो जाता है। इसलिये हे विभो, आपका मुख जगतको प्रकाशित करनेवाला एक अपूर्व चन्द्रमा है।

इत्थं स्तुतो यदि विभो विरहं भिनत्सि
भिन्नैस्तदा रमण संवननैरलं मे।
दावानलः शममुपैति घटाम्बुभिश्चेत्
"कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः" ॥ १९ ॥

हे विभो, इस प्रकार स्तुति करनेसे यदि आप मेरी विरहज्वालाको शान्त कर देंगे, तो फिर हे रमण, मुझे वशीकरणकी अन्य क्रियाओंसे क्या प्रयोजन है? दावानल यदि घड़ेके जलसे ही शान्त हो जावे, तो फिर पानीके भारसे झुके हुए बादलोंसे क्या काम है?

याभिः कदाचिदपि देव निरीक्षितस्त्व-
मन्येन ताः कथमहो रतिमाप्नुवन्ति।
रत्ने यथा सहृदयाः खलु सादराः स्यु—
"नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि" ॥ २० ॥

हे देव, जिन स्त्रियोंने आपको कभी एक बार भी देख लिया, वे भला दूसरेके साथ कैसे प्रेम करें? क्योंकि जो सहृदय पुरुष हैं, वे जैसी रत्नमें आदरबुद्धि रखते हैं, वैसी कांचके टुकड़ेमें यद्यपि वह किरणोंसे आकुल अर्थात् प्रकाशमान् होता है — तो भी नहीं रखते हैं। तात्पर्य यह कि, आप जैसे पुरुषरत्नका दर्शन करके अब मैं अन्य कांचखंडके समान पुरुषोंमें प्रेम नहीं कर सकती।

प्राणेश पूर्वभवसन्ततिसन्निबद्ध—
स्नेहस्त्वमेव रमणो मम कामरूपः।
विद्याधरोऽपि मदनोऽपि न वासवोऽपि
"कश्चिन् ो हरति नाथ भवान्तरेऽपि" ॥ २१ ॥

हे प्राणनाथ, आप ही मेरे पूर्वके अनेक जन्मोंसे बँधे हुए स्नेहके स्वामी कामदेवस्वरूप पति हैं। सो इस भवमें तो क्या अन्य भवोंमें भी कोई मेरे मनको हरण नहीं कर सकता; चाहे वह विद्याधर हो, चाहे कामदेव हो, और चाहे साक्षात् इन्द्र ही हो।

निष्कारणं मयि यथा वहते विरोध—
मेषा तथा न हि विभो निखिला दिशस्ताः।
मत्पीडनार्थमचिरात्सकलेन्दुबिम्बं
"प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्"॥२२॥

हे विभो, जिस प्रकार विना कारण यह पूर्व दिशा मेरे साथ विरोध करती है, उस प्रकार अन्य सब दिशायें नहीं करतीं। मुझे दुःख देनेके लिये तो यह पूर्व दिशा ही स्फुरायमान किरणोंको धारण करनेवाले पूर्ण चन्द्रको बार बार उत्पन्न करती है।

गत्वा निजं पुरमवाप्य नराधिपत्वं
साकं मया सफलयाशु वयो नवीनम्।
तत्रोचितं कुरु वृषं यदि मुक्तिकामो
"नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः"॥२३॥

अब प्यारे, अपने नगरको चलकर और राजपदको प्राप्त करके मेरे साथ इस नई उमरको सफल कीजिये। और यदि आपकी मोक्ष प्राप्त करनेकी ही इच्छा हो, तो वहींपर उचित धर्मकी पालना कीजिये। क्योंकि हे मुनीन्द्र, इसके सिवाय मोक्षका कोई दूसरा कल्याणकारी मार्ग नहीं है। अर्थात् गृहस्थावस्थामें रहते हुए धर्मका पालन करना ही मोक्षका सुखसाध्य मार्ग है।

संसारसारमृषयः कथयन्ति रामां
प्राप्तां कथं त्यजसि तां स्वकुलानुरूपाम्।
एवं विमुञ्च जडतातिशयं यतस्त्वां
"ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः" ॥ २४ ॥

ऋषि मुनि लोग स्त्रीको संसारका सार बतलाते हैं। फिर आप उसे अपने कुलके योग्य प्राप्त करके भी क्यों छोड़ते हैं? अब आप इस अतिशय मूर्खपनेको छोड़ दीजिये। क्योंकि आपको सन्त पुरुष निर्मल ज्ञानस्वरूप कहते हैं।

प्राज्ञोऽसि नीतिनिपुणोऽसि गुणाकरोऽसि
दातासि भो सकलसत्त्वशिवंकरोऽसि।
मद्वाञ्छितं कुरु विभो बहु किं स्तवीमि
"व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि"॥ २५॥

हे विभो, आप पंडित हैं, नीतिमें चतुर हैं, गुणोंकी खानि हैं, दाता हैं, सर्व जीवोंका कल्याण करनेवाले हैं, और अधिक स्तुति क्या करूं, आप ही प्रगटरूप पुरुषोत्तम हैं। इसलिये मेरे मनोरथको पूर्ण कीजिये—मुझे स्वीकार कीजिये।

पीताब्धिरेष जलधीन्निखिलान्निपीय
सौहित्यमाप वद सम्प्रति किं करोमि।
मग्ना वियोगजलधौ शरणं श्रिता ते
"तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय"॥ २६॥

यह अगस्त्य तो सारे समुद्रोंको पीकर तृप्त हो गया है—अन्य

किसी समुद्रको पीनेकी अब इसकी इच्छा नहीं है । इस लिये हे नाथ, बतलाइये अब मैं क्या करूं? इस वियोगसमुद्रमें मग्न होते हुए मैंने आपका आश्रय लिया है । आपको नमस्कार है । हे जिन, आप मेरे इस समुद्रको शोषण करनेके लिये हूजिये अर्थात् इस वियोगसमुद्रको सोख लीजिये । भाव यह कि, मेरे वियोगसमुद्रको अगस्त्य तो अब सोखेगा नहीं, क्योंकि वह तो सब समुद्रको पीकर तृप्त हो गया है । अब केवल आप ही इसके सोखनेवाले हैं ।

धन्या विभो युवतयः खलु तास्तमायां
यासां समेति सपदीक्षणयोः प्रमीला ।
धिग्मां जहात्यहह सा विगता यतस्त्वं
"स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि" ॥२७॥

हे विभो, रातको जिनके नेत्रोंमें शीघ्र ही तन्द्रा आ जाती है, उन स्त्रियोंको धन्य है । परन्तु हाय! मुझे धिक्कार है, जो वह तन्द्रा मुझे नहीं आती है और इसलिये मैं आपको कभी स्वप्नमें भी नही देखती हूं । यदि थोड़ी बहुत आंख लगे, तो स्वप्नमें तो आपको देख लिया करूं ।

दृष्टं विवाहसमये क्षणसंमदाय
प्रोद्यत्प्रभाप्रसरमीश मुखं तवाभूत् ।
नीतं तदैव विधिना तददृश्यतां हि
"बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति" ॥ २८ ॥

हे स्वामी, विवाहके समय देखा हुआ जो आपका प्रकाशमान्

मुख थोड़ी देरके लिये आनन्दका कारण हुआ था, हाय! विधाताने उसको तत्काल ही इस तरह अदृश्य कर दिया; जिस तरहसे बादलोंका समीपवर्ती सूर्यका प्रतिबिम्ब थोड़ी देरके लिये दिखकर छुप जाता है।

भद्रासने समुपविश्य जगज्जनाना—
मुच्चैर्विभास्यसि विभो नयमार्गमग्र्यम्।
सन्दर्शयन्यदुकुलैकललाम विम्बं
"तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः" ॥ २९ ॥

हे विभो, हे यादववंशके अद्वितीय शृंगार, आप कल्याणरूप आसनपर विराजमान होकर जगवासी जीवोंके लिये श्रेष्ठ नयमार्गको दिखलाते हुए ऐसे शोभित होंगे, जैसे ऊंचे उदयाचलके शिखरपर सूर्यका विम्ब शोभित होता है।

भद्रात्मम‍ञ्जनरुचा भवता व्यवाये
नूनं विभास्यति सुवर्णसवर्णवर्णम्।
सार्द्राम्बुवाहनिवहेन नतेन काम—
"मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्" ॥ ३० ॥

हे प्राणप्यारे, संभोगक्रीड़ाके समय मेरा सुवर्णवर्ण (सोनेके रंग सरीखा) शरीर आपके शरीरकी साँवरी प्रभासे ऐसा शोभित होगा, जिस तरहसे सुमेरुपर्वतका सुवर्णमयी ऊंचा तट पानीसे भरे हुए और झुके हुए श्याम मेघोंसे शोभित होता है।

सूनाशुगस्य विषमायुधलुब्धकेन
लक्ष्यीकृतामव मृगीमिव कान्दिशीकाम्।

यस्माद्दयारसमयं समयं जनेऽस्ति
"प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्" ॥ ३१ ॥

कामदेवरूपी व्याधाने मुझे 'किधर जाऊं किधर न जाऊं' इस तरह सोचती हुई भयभीत मृगीकी नाईं अपने हिंसास्थानरूप बाणका निशाना बनाई है। इसलिये हे भगवन्, मेरी रक्षा करो। क्योंकि लोकमें आपका तीन जगतका परमेश्वरपना आपके दया-रसमयी सिद्धान्तको प्रगट करता है। अर्थात् जब सारे जगतमें आपकी दया प्रसिद्ध हो रही है, तब दया करके कामव्याधके पंजेसे मुझे बचा लीजिये।

बालां विहाय दयनीयतरां गतस्त्वं
कृत्वा दयां पशुगणे मयि निर्दयत्वम्।
निर्दूषणं मम हृदं कुरु हे दयालो
"खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी" ॥ ३२ ॥

हे नाथ! आप इस अतिशय दयाके योग्य बालाको छोड़कर चले आये! आपने पशुओंपर दया करके मुझपर बड़ी भारी निर्दयता की। परन्तु हे दयालु, आकाशमें आपके यशका बखान करनेवाले दुन्दुभी बजते हैं, इसलिये इस विषयमें मेरे हृदयको शल्यरहित कर दीजिये। अर्थात् मुझे आपकी दयाके विषयमें जो शंका हो गई है कि–"यह कैसी दया, जिसमें पशुओंपर तो दया परन्तु दयायोग्य स्त्रीपर निर्दयता की जाती है" सो उसे निकाल दीजिये।

नाथ त्वदीयवचनामृतवृष्टिपूरे
स्नानाय हन्मदनवह्निविदह्यमाना।

प्राप्ता कथं स्रवति नैव सुवृष्टि (?) माहं (रच)
"दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा" ॥३३॥

हे नाथ, कामदेवकी अग्निसे मेरा हृदय जल रहा है। इस लिये मैं आपके वचनरूपी अमृतकी वर्षाके पूरमें स्नान करनेके लिये आई हूं। सो अब वह आपकी दिव्यवर्षा अथवा वचनोंकी पंक्ति स्वर्गसे क्यों नहीं बरसती है? अर्थात् आप बोलते क्यों नहीं हैं?

कामोरगेन्द्रविषदन्तकृतव्रणाय
सङ्गं त्वदीयममृतौषधमाशु देहि।
नोचेन्मदीयमरणं हि त्वदीयकाष्ठा
"दीप्त्याजयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्"॥३४॥

हे कान्त, कामरूपी सर्पराजके विषदन्तोंसे मेरे हृदयमें घाव पड़ गये हैं। इसलिये उनके अच्छे होनेके लिये आप अपने संयोगरूपी अमृतकी औषधि शीघ्र ही दीजिये। नहीं तो अवश्य ही मैं मर जाऊंगी। आपका प्रभाव अपने प्रकाश करके चन्द्रमासे शोभायमान् रात्रिको भी जीतता है। अभिप्राय यह कि, आपसे तो अमृत औषधकी प्राप्ति होनी ही चाहिये। क्योंकि चन्द्रमासे अमृत झरता रहता है।

अस्मिल्ललाटपटले व्यलिखद्विधाता
यां दुर्लिपिं निजकरान्मम प्राणनाथ।
कस्त्वद्विना प्रमृजितुं भगवन्समर्थः
"भाषास्वभावपरिणामगुणप्रयोज्यः" ॥ ३५ ॥

प्राणनाथ, विधाताने मेरे इस लिलाटपर जो बुरे अक्षर लिख दिये हैं, उन्हें मिटानेके लिये आपके विना, अक्षरोंके स्वभावको उलटपलट कर देनेवाला और कौन पुरुष समर्थ हो सकता है? अर्थात् मेरी होनहारको बदल सकते हैं तो आप बदल सकते हैं, दूसरा कोई ऐसा सामर्थ्यवान् नहीं है ।

पद्माकरं तमवदातजलं विलोक्य
चेतो भविष्यति रतिप्रसितं तवापि ।
स्वप्रेयसीरतिरतास्तलिनोपमानि
"पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति" ॥ ३६ ॥

अपनी द्वारिकानगरीमें जो निर्मल जलके भरे हुए सरोवर हैं, उन्हें देखकर आपका चित्त भी रतिक्रीड़ा करनेमें आसक्त हो जायगा । क्योंकि उन सरोवरोंमें अपनी प्यारी प्रमदाओंकी रतिमें लवलीन हुए देवगण शय्याके समान (सफेद) कमलोंकी रचना करते हैं । भाव यह है कि, जो स्थान देवोंको भी रतिका कारण है, वह आपके लिये क्यों नहीं होगा?

प्राक्पूर्वभौ यदुविभो भवता यथालं
नैवं तु सम्प्रति महोज्ज्वलराजभिस्तैः ।
यादृग्महः स्फुरति शीतकृतः क्षपायां
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥ ३७ ॥

हे यदुवंशियोंके स्वामी, वह द्वारकानगरी पहले आपके कारण जैसी सोहती थी, वैसी अब बड़े कान्तिमान् राजाओंसे भी नहीं

शोभित होती। रातको चन्द्रमाका तेज जिस प्रकार स्फुरायमान् होता है, वैसा तेज प्रकाशमान् होने पर भी तारागणोंका कहांसे हो सकता है? तात्पर्य यह कि, आपके विना द्वारिकानगरी सूनी शोभाहीन हो रही है।

कन्दर्प्पदारुणशराहतिभीताचित्ता
त्वामेव देव शरणार्थमहं प्रपन्ना।
यस्माद्रिपं प्रबलमप्यवदातकीर्ते
"दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्" ॥ ३८ ॥

हे देव, कामदेवके बाणोंकी कठिन चोटोंसे डरकर मैं शरण लेनेके लिये आपके पास आई हूं। क्यों कि हे निर्मल कीर्तिके धारण करनेवाले, जो लोग आपका आसरा ले लेते हैं, उन्हें प्रबल शत्रुको देखकर भी कुछ भय नहीं होता है।

सत्यं वचः शृणु विभो रमणं करोमि
त्वामेव सुन्दर भवानिव वा भवामि।
अन्यो ह्यनन्यमनसं जनमञ्जनाभ
"नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते" ॥ ३९ ॥

हे प्रभो, हे सुन्दर, मैं सच कहती हूं, सुनिये, या तो मैं आपको ही अपना पति बनाऊंगी, अथवा आप ही सरीखी हो जाऊंगी अर्थात् दीक्षा ले लूंगी। क्योंकि हे श्याम, आपके चरणरूपी पर्वतका आश्रय लेने वाले तथा उनमें अनन्यचित्त होकर लवलीन होनेवाले जीवपर अन्य कोई आक्रमण नहीं कर सकता है। तात्पर्य यह है कि,

दोनों ही अवस्थाओंमें मैं आपके शरणमें रहूंगी, जिससे कोई आक्रमण नहीं कर सके।

रुष्टोऽपि देव रमणः प्रमदां पराभि—
भूतां समुद्रविजयात्मज पाति सम्यक्।
यद्विप्रयोगदहनं मदुरो दहन्तं
"त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम्"॥४०॥

हे समुद्रविजयात्मज, अर्थात् हे नेमिकुमार, जैसे रूठा हुआ भी पति दूसरोंसे सताई हुई अपनी स्त्रीकी अच्छी तरहसे रक्षा करता है, उसी प्रकारसे यह वियोग आग जो मेरे हृदयको जला रही है, उसे हे देव, आपका नामकीर्तनरूपी जल शमन कर देवे। अर्थात यद्यपि आप रुष्ट हैं, तो भी इस अग्निसे आपको मुझे बचा लेना चाहिये।

दष्टा मनोजभुजगेन मुहुर्जपन्ती
नामापि ते कथमहो गतचेतना स्याम्।
अन्यो भवत्सपदि सुन्दर निर्विषश्चेत्
"त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः"॥४१॥

हे सुन्दर, कामदेवरूपी सांपकी डसी हुई मैं आपका नाम बारंबार जप रही हूं, तो भी चेतनाहीन क्यों हो रही हूं? यह कामसर्पका विष क्यों नहीं उतर जाता? क्योंकि जिनके हृदयमें आपकी नामरूपी नागदमनी जड़ी रहती है, वे पुरुष तो तत्काल ही निर्विष हो जाते हैं।

उज्जृम्भते हृदयपङ्कजमुज्जहाति
म्लानिं वपुः फलति कामितकल्पवृक्षः।
नश्यन्त्यशेषविपदश्च वियोगदुःखं
"त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति" ॥४२॥

आपका कीर्तन करनेसे अर्थात् आपके गुणोंका गान करनेसे हृदयकमल खिल उठता है, शरीर मलिनताको छोड़ देता है—निर्मल हो जाता है, मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फल जाता है, सारी विपदाएँ नष्ट हो जाती हैं, और वियोगरूपी दुःख अन्धकारके समान शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो जाता है।

कल्याणकल्पकमलाविमलाशयत्व—
सौभाग्यभाग्यसुतसातियशोऽनुषानि।
सद्यः फलानि सकलानि जना जिनेश
"त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते" ॥४३॥

हे जिनेश, आपके चरणकमलरूपी वनका आश्रय लेनेवाले पुरुष कल्याणरूप लक्ष्मी, निर्मल अभिप्राय, सौभाग्य, भाग्यवान् पुत्र, दान और यश आदि सारे इष्ट फलोंको तत्काल ही प्राप्त करते हैं।

नेमिर्जगावथ वशां स्मरविक्लवां तां
मोहं परित्यज विधेहि वृषं वरेण्यम्।
निःश्रेयसं सुमुखि यस्य विशुद्धचित्ता-
"स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति" ॥४४॥

इसके अनन्तर श्रीनेमिनाथ भगवान् उस कामविकला और

अपनी वशवर्तिनी राजीमतीसे बोले, "हे सुमुखी, तू इस मोहको छोड़ दे और श्रेष्ठ धर्मको धारण कर; कि जिसके स्मरणसे विशुद्ध चित्तवाले जीव दुःखको छोड़कर संसारसे मोक्षमें जा पहुंचते हैं।"

धर्मं समाचर नितम्बिनि यत्प्रभावा-
ज्जीवा प्रकाशधिषणाश्च सितोदरेभ्यः।
हंसोजसो मघवभूतविभूतयोऽत्र
"मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः" ॥ ४५ ॥

"हे नितम्बिनि, धर्मको भले प्रकार आचरण कर; जिसके कि प्रसादसे जीवोंका ज्ञान विकसित होता है, बगुला भी हंस सरीखी कान्तिवाले हो जाते हैं और मनुष्य इन्द्र जैसी बड़ी भारी विभूतिके स्वामी होकर कामदेवके समान सुन्दर रूपवान् हो जाते हैं।"

तद्वत्परत्र सुविचित्रसुपर्वसौधा-
नुद्भास्य तानि विलसन्ति सुखानि साधु।
सिद्धेश्च सिन्धुरगते शुभशर्मभाजः
"सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति" ॥ ४६ ॥

"इसी प्रकारसे परलोकमें देवोंके आश्चर्यकारी महलोंको अधिकृत करके वहांके सुखोंको भले प्रकारसे भोगते हैं, तथा हे गजगामिनी, शीघ्र ही मोक्षको भी प्राप्त कर लेते हैं; जिसमें कल्याणरूप अनन्त सुखके भोक्ता होकर कर्मबंधके भयसे रहित हो जाते हैं।"

बन्धूनिवन्धननिभान्विषयान्विषाभा-
नर्थाननर्थनिवहानिव हा विमूढे

मत्वा विधेहि वृषमाशु यतो विशालो-
"यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते" ॥ ४७ ॥

"हे मुग्धे, बन्धुओंको बन्धनोंके समान, विषयोंको विषके समान और अर्थोंको (धनको) अनर्थोंके समान समझकर शीघ्र ही धर्मको धारण कर; जिससे कि बड़े भाग्यशाली बुद्धिमान् भी तेरी स्तुति करें। अर्थात् तू बड़े भारी उत्कृष्टपदको प्राप्त होवे।"

श्रुत्वेति मर्तृवचनं सहसा प्रबुद्धा
प्राप्य व्रतं च सुरसद्म समाससाद ।
नेमिस्ततो ह्यनुजगाम यतोऽधुनापि ।
"तं मानतुङ्गमिव सा समुपैति लक्ष्मीः" ॥ ४८ ॥

अपने पतिके ऐसे वचन सुनकर राजीमती एकाएक प्रबुद्ध हो गई—इस लिये उसने तत्काल ही जिनदीक्षा ले ली और तप करके वह स्वर्गको प्राप्त हुई। भगवान् नेमिनाथ उसके पीछे मोक्ष-धामको पधारे। और अब आगे वह लक्ष्मी भी उन मानतुंग अर्थात् पदमें ऊंचे श्रीनेमिनाथको प्राप्त करेगी। अभिप्राय यह कि स्वर्गसे चयकर वह भी मुक्त हो जायगी।

प्रशस्तिः ।

श्रीसिंहसङ्घसुविनेयकधर्मसिंह—
पादारविन्दमधुलिण्मुनिरत्नसिंहः ।
भक्तामरस्तुतिचतुर्थपदं गृहीत्वा
श्रीनेमिवर्णनमिदं विदधे कवित्वम् ॥ ४९ ॥

श्रीसिंहसंघके अनुयायी धर्मसिंह मुनिके चरण कमलोंमें भ्रमरके समान अनुरक्त रहनेवाले श्रीरत्नसिंह मुनिने भक्तामरस्तोत्रके चौथे चरणोंको लेकर यह श्रीनेमिचरित्र वर्णनात्मक काव्य बनाया ।

इति श्रीभक्तामरस्तुतिचतुर्थपदसमस्यानिबद्धं
प्राणप्रियं नाम काव्यं समाप्तम् ।